प्रकाशक—
पद्मसिंह जैन,
व्यवस्थापक-श्रीजैनागमप्रकाशकमण्डल,
जौहरी बाजार, आगरा।

सहायक—
विदुषी बहिन श्रीमती पिस्ताबाईजी,
लोहामण्डी, आगरा।

मुद्रक—
पद्मसिंह जैन,
अध्यक्ष-श्रीजैनशास्त्रोद्धारक प्रिंटिंग प्रेस,
जौहरी बाजार, आगरा।

किंचिद्वक्तव्य ।

प्रिय सुपाठको ! आज कल हमारे जैन समाज के कतिपय सज्जन गण इस जाल में फंसे हुए हैं कि जैन मुनियों के लिये मुख पर वस्त्रिका बांधने की पद्धति निक है। यह कथन उनका नितान्त मिथ्या है। क्योंकि मुख पर मुखवस्त्रिका की प्रणाली सनातन से चली आती है। इस विषय में "शास्त्र विशारद जैना- र्य श्री जिनयशः सूरिजी महाराज के चरणोपासक-पन्यास श्री केसर मुनि गणि शिष्य और मुर्शिदाबाद निवासी श्री बुद्धिसागर मुनि द्वारा प्रकाशित "प्रश्नोत्तर" का निम्नलिखित छठा प्रश्न पढ़िये:—

"श्री जिन प्रतिमा की थूँक से आशातना नहीं होने के लिये मुखे मुख प बांध कर श्रावक श्राविका पूजा करते हैं। इसी तरह श्री जिनशास्त्र से आशातना नहीं होने के लिये आपके महान् पूर्वज साधु साध्वीओं मुखे मुखपत्ती बांध के व्याख्यान करने की गुरु परंपरा से चली आई माचारी को उत्थापि नहीं किन्तु आपने वा आपके गुरु ने श्री जिन शास्त्र की आशातना करने के लिये उत्थापि है उससे आप अपने पूर्वजों की उक्त समाचारी से विरुद्ध हैं या नहीं ?"

श्री देवसूरिजी भी स्वरचित 'समाचारी' में लिखते हैं:—

"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बध्वा, प्रतिलेखयति रजोहरणम् ।"

इसी तरह श्री धर्मसिंह गणि जी 'श्री आवश्यक मूल बार अठनो टबा' के ऐसी प्रकार प्रतिपादन करते हैं —

"तथा जे सामायिकवंतने शास्त्र अभ्यास करवो होय, ते उत्तम क पोतें मुंहपत्ति मुखे बांधी ने पुस्तक उपर दृष्टि राखी ने पढे अथ सांभले ।"—१२९ वीं पृष्ठ ।

प्रिय सुपाठको ! इन प्रमाणों से स्पष्टतया सिद्ध है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधने की प्रणालि सनातन से चली आती है, नई नहीं है। [illegible] में मुख पर मुखपत्ति के बांधने की जो आज्ञा दी है उसका [illegible] है। इसके प्रमाण में निम्नलिखित प्रमाण पर्याप्त है:—

श्री लक्ष्मी वल्लभ गणि विरचित "श्री उत्तराध्ययन सूत्र" के [illegible] की दीपिका में निम्नलिखित उल्लेख है —

"यथा [illegible] मुखवस्त्रिकां [illegible] ।
तथा [illegible] च, [illegible]" [illegible]

अर्थात् मुख में पड़ने हुए जन्तुओं की रक्षा [illegible] के निमित्त मुख पर मुखवस्त्रिका [illegible] चाहिये। [illegible] के तीसरे भाग में लिखा है —

नासं मुहं च बंधइ, तोएव साहू पमज्जता।" —२०९ वीं

· ऐसे ही 'ओघनियुक्ति" की चूर्णि में लिखा है और इसी प्रकार "शतपदी"
भी लिखा है कि:—

"मोपती विना मौं मौं मच्छर मांखी, पाणी ना बिंदु के धूल प
छे, देशना देतौं के छीकतौं मोंना गरम वायु वड़े बाहेर ना वायु
विराधना थाय छे;तथा आपणी थूंको ऊडीने वीजाने स्पर्शे छे" १५९वीं पृ

श्रीहेमचन्द्राचार्य्य विरचित "योगशास्त्र" के गुजराती अनुवाद में लिखा है:—

"मुहपति पण मुख मौं पडता जीवों नी विराधना टाल
माटे छे" २६०–२६१ वीं पृष्ठ।

प्रिय सुपाठको! उक्त प्रमाणों से निर्विवाद सिद्ध है कि मुख पर मुखवस्त्रि
जीवरक्षादि के निमित्त बाँधी जाती है। आधुनिक अनेक विद्वानों की भी सम्मति
है कि जैन मुनियों की मुख पर मुखवस्त्रिका बांधने की पद्धति निःसन्देह जीवरक्ष
के लिये सर्वथा उपयोगी है। इस विषय पर कतिपय सुप्रतिष्ठित विद्वानों की सम्मतियां
द्वारा सम्मतियां ली गई हैं। ये इस पुस्तक द्वारा आप सज्जन गणों के कर कम
में समर्पित करता हूँ, और आशा करता हूँ कि आप सज्जन गण मुख पर मु
वस्त्रिका बाँधने की सनातनीय सच्ची जैन प्रणाली को स्वीकार कर जिन धर्म के कल्या
करने में तत्पर होंगे।

ओ३म् 'सिद्धा' सिद्धिं मम दिसन्तु'

सौभाग्यश्रीय——

शङ्कर मुनि।

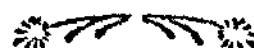
——:——

शुद्धाशुद्ध पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	६	मरेस्यान्त	मस्यान्ते
७	१४	गुणवृत्ति	गुणवती
११	२१	केयुर	केयूर
११	२२	मान्यते	मान्येते
११	२४	३०	[illegible]
१६	१४	प्राणि प्राण	प्राणिप्राण

॥ श्रीः ॥

श्रीसमस्यापूर्तिसुमनमाला।



[पूर्तिकार—श्रीमान् पं० मुनि ...]

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

श्रीवीरस्य गुणाधिभर्तुरभितश्चेतश्चमत्कारिणो,
भक्त्या वासवसंनिषेवितपदाम्भोजस्य तीर्थेशितुः।
वाग्गुप्तसमये करावृतमपि स्याद्वादसंदेशकं,
चन्द्रस्पर्धि मुखं यथो ह्यतिशया 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥ १ ॥

टीका—गुणाधिभर्तुः गुणानामधिपतेः, अभितः—समन्तात्, चेतश्चमत्कारिणः—चित्ताश्चर्यजनकस्य, भक्त्या प्रेमातिशयेन, वासवसंनिषेवितपदाम्भोजस्य—इन्द्रैः विधिपूर्वकं निरन्तरमुपासितं चरणारविन्दं यस्य, तीर्थेशितुः—तीर्थङ्करस्य, श्रीवीरस्य भगवतः श्रीवर्धमानस्य, करावृतमपि—न्यस्तहस्तकमपि, स्याद्वादसंदेशकम् अनेकान्तवादोपदेशदायकमपि, चन्द्रस्पर्धि—चन्द्राभिभावुकम्: मुखम् आननम् वाग्गुप्तसमये—वचनमेलायाम्, अतिशयात् तीर्थकरान्यतमातिशयेन तुण्डे मुखे यथा देवी-यन्त्रेण, वस्त्रिका बद्धा ... इति ... एवं सुष्ठ्विति संक्षिप्तार्थः ॥ १ ॥

[illegible]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

सम्यग्दर्शनवेदनाचरणसद्रत्नत्रयाराधकं,
पार्श्वापत्यमहर्षिसङ्घमहितश्रीकेशिवाचंयमम् ।
क्रीडासक्तमना जगत्सुखकरं दृष्ट्वा प्रदेशी नृपः,
सासूयः सचिवं जगाद स कथं 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥२॥

टीका—जगत्सुखकरम्-जगदानन्दकारकम्, सम्यग्दर्शनेत्यादि-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकमुत्तमं रत्नत्रयं तस्याराधकम्, पार्श्वापत्येत्यादि-श्रीपार्श्वनाथस्य शासनानुयायिमहामुनिगणेन पूजितं श्रीकेशिश्रमणं दृष्ट्वा, क्रीडासक्त-नृपः-उद्याने श्रमजिहासया इतस्ततो विहरन् भूपालः प्रदेशी, तदा-तस्मिन्समये स, सासूयः-गुणेष्वपि दोषानाविष्कुर्वन्, सचिवम्-चित्रप्रधानाह्वयम्, जगाद-उवाच, कथं भो ! मुखे-मुखोपरि बद्धं वस्त्रखण्डमेतैः ॥ २ ॥

हिन्दी-अनुवाद—जगत् को आनन्द देने वाले, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्ररूप उत्तम रत्नत्रय के आराधक, तथा श्री पार्श्वनाथ के सन्तानी शिष्य मुनियों करके उपासित श्री केशी श्रमण को देखकर बाग में सैर करता हुआ राजा प्रदेशी जड़ मूढादि असभ्य शब्दों के उच्चारणपूर्वक चित्रप्रधान से बोला—भो ! इन्होंने मुखपर वस्त्र क्यों बाँध रखा है ? ॥ २ ॥

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

न्यक्तोऽप्यक्षभृतां गणोऽभिलषते सर्वत्र सौख्यं परं,
सिद्धान्तोऽयमिति न्यरूपि विभुभिः सत्यार्थवाक्याधिपैः ।
सूक्ष्मासूक्ष्मशरीरिणां भवति वै हिंसाऽऽननानावृते,
नो तेषां छ्वने तथाचरविधि 'स्तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥ ३ ॥

टीका—अक्षभृताम्-अक्षाणीन्द्रियाणि 'हृषीकमक्षं करणं, स्रोतः खं विषयीन्द्रियम्' इत्यभिधानेऽभिधानात्, तानि बिभ्रतीत्यक्षभृतः-जगज्ज-

न्तवः । अनेनैकेन्द्रियजीवेभ्य आरभ्य पञ्चेन्द्रियानभिव्याप्यागमानुसारेण व्यवस्था कृता भवति । न केवलं पञ्चेन्द्रियजीवानां, किन्तु पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणामपीत्यर्थः । न्यक्षः--सर्वोऽपि, न तु मनुजा एव तिर्यञ्च एव वेति विधिः । कः ? गणः-प्राणिसंघातः, अभिलपते यतः सकलोऽपि किल जगज्जन्तुनिवहः प्रथमं स्वस्मै सुखमभिवाञ्छति, न तु परस्मै । अतोऽभिलपणक्रियाया आत्मनेपदत्वमात्मनेविन्यस्वपदर्शनार्थमेवे गुरुचरणाभिः । क ? सर्वत्र-ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपायां त्रिलोक्याम् । सौख्यम्-सुखमेव । परम्-केवलम् , इति-अमुना प्रकारेण । अयं सिद्धान्त कालत्रयेऽप्येकं सारूप्येणावस्थायि निश्चितवचनम् । न्यरूपि-प्रतिपादितं स्वमुखारविन्देन । कैः ? विभुभि -तीर्थंकरदेवैः, कुतः विभवन्ति-नितरां शक्तिशालिनो भवन्ति ? अनन्तशक्तिमत्त्वात् । अथवा, वि-विशेषेण भवन्ति सर्वत्र विभवः-सर्वज्ञाः, तेषां हि ज्ञानस्य गिरिकुट्यादिभिरप्रतिहतत्वात्सर्वत्र व्यापित्वात्, ज्ञानज्ञानवतोश्च कथञ्चिदभेदः । कथम्भूतैस्तैः ? सत्यार्थवाक्याधिपैः-सत्यस्य-यथार्थस्य, अर्थो-विषयो यस्मिन् तादृशं तस्याभिधायकं वा वचनं वाणीति यावत्, तस्याधिपैः-अधिपतिभिः सत्यपदार्थाभिधायकभारतीस्वामिभिरिति वा । उत्तरार्धे-सुखकस्यादितो निवृत्त्यर्थं सदुपायो निरूप्यते आननानाद्ये सुखानामादिमं सौन. सूक्ष्मासूक्ष्मशरीरिणाम्-सूक्ष्मा नेत्रादीनामविषया वाय्वादयः, सूक्ष्मनामकर्मोदया वा, असूक्ष्मा - दृष्टिगोचरा द्वीन्द्रियादयः; ते च ते शरीरिण -देहधारिणः संसारिजीवास्तेषाम् . हिंसा प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणरूपो व्यापार सा वै ध्रुवं वादपूर्णे वा; भवतीति । हि-इत्यतः तेषाम् सूक्ष्मासूक्ष्मदेहभृताम् अतएव स्वात्मो सुखजन्यहिंसानिवृत्त्यर्थः । यथा नूनं ... तथा अपराधिः-कैश्चिदन्यद्रूपोति विधानम् । नो नैवाऽन्यो ... ॥ ३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—जगत् में समस्त प्राणीगण एकमात्र सुख को ही चाहते हैं। यह सिद्धान्त सत्योपदेश प्रदाता सब सर्वज्ञों ने प्रतिपादन किया है। निःसन्देह बिना मुखाच्छादन किये भाषण करने से मुख या वाणी द्वारा सूक्ष्म और स्थूल ... के जीवों की हिंसा होती है। अतः उनकी रक्षा के हेतु, या यों कहें कि मुख सम्बन्धी हिंसा की निवृत्ति के लिए जैसी मुख वस्त्रिका उपयोगी है, वैसा दूसरा कोई शास्त्रोक्त उत्तम विधान नहीं है ॥ ३ ॥

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

रक्षा स्याद्वदनेऽम्बरानुधरणात्स्थूलेतरप्राणिनां,
तेषां तत्र किलाप्रवेशत इति स्वास्थ्यप्रदं सम्मतम्।
लाभाः सन्त्यपरे गुणा बहुविधा मौनीन्द्रलिङ्गादय—
स्तस्माज्जैनवचोऽनुशीलनरतै 'र्बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥ ४ ॥
अथवा – स्तस्माज्जीवदयापरैः सुमुनिभि 'र्बद्धा मुखे वस्त्रिका'।

टीका-वदने-मुखे। अम्बरानुधरणात्-वस्त्रस्य निरन्तरं धारणात्। स्थूलेतरप्राणिनाम्-स्थूलाश्च तदितरे सूक्ष्माश्च, ते च ते प्राणिनो जीवास्तेषां रक्षा स्याद्-भवेदिति। तेषाम्-स्थूलेतरजीवानाम्। किलेति संभावनायाम्। तत्र-मुखे। अप्रवेशतः अप्रवेशनात्। इति-हेतोः। स्वास्थ्यप्रदम्-आरोग्यप्रदम्, सम्मतम्-स्वीकृतं, सुधीभिर्वैद्यैश्चेति शेषः। मुखवस्त्रधारणे अपरे-अन्येऽपि स्वाध्यायसमये शास्त्रस्योपरि, परस्परसंभाषणे चान्येषामुपरि मुखनिर्गतनिष्ठीवनापतनाद्युपरोधादयो लाभाः सन्ति-विद्यन्ते। गुणाश्च अहिंसायाः संयमस्य चोपकारकत्वात् बहुविधा वर्तन्ते। के ते? मौनीन्द्रलिङ्गादयः-मुनीन्द्राणामिदं मौनीन्द्रम्, तच्च तल्लिङ्गं च मौनीन्द्रलिङ्गम्, तदादयो विशेषगुणाः। अस्ति च सूत्रेषु; रजोहरणपात्रादिवत् निरन्तरं रक्षणार्थं ... , जिनैः-रागद्वेषविजेतृ-भिः ... जिनवचः-प्रवचनम्। तदनुशीलने निरताः ... सुमुनिभिः

स्यर्थः । अनेकविधोंल्लाभान् गुणांश्च समीक्ष्य मुखे वस्त्रिकाऽऽगमविधिना बद्धा-सम्यग्धारितेत्यशेषार्थः ॥ ४ ॥

[illegible] बांधने से एकतो [illegible] विधैले जन्तुओं [illegible] डाक्टरों और विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय करते समय शास्त्र पर थूक आदि का न गिरना इत्यादि और भी कई लाभ हैं। साथ ही जैन मुनियों का यह प्रधान चिह्न है, जिसके कारण संयम का उपकार और अहिंसा का पालन होता है। अतएव प्रवचन के रहस्य को जानने वाले मुनियों ने आगम विधि के अनुसार मुख पर वस्त्र को धारण किया है ॥ ४ ॥

——:o:——

[पूर्तिकार- श्रीमान् पं० व्रजनाथ मिश्र व्याकरणतीर्थभूषण, धनजरी दरभंगा]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

[illegible] था,

[illegible] ।

[illegible]ागमबोधिता भवतरी रत्नत्रयीदायिका,

[illegible]नानां मुखवस्त्रिका विजयते 'बद्धा मुखे श्रेयसी' ॥ ५ ॥

टीका—आस्ये—मुखे, उद्भूता-उत्पन्ना ये समीरकायास्तेषां वध-[illegible]नं तस्मात् नराणां त्राची-रक्षिका. विद्यायाः शास्त्रस्याऽध्यापनं-पाठनं, पाठः-पठनं, तत्कालिकानां बहूनामनेकेषामुच्छिष्टादिदोषाणामपहा-निवारिका, पुनर्जैनीया ये आगमास्तेषु बोधिता-विधेयता प्रतिपादिता, पुनर्भवे-संसारे, तरी-पोतरूपा। पुनः रत्नत्रयी-ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा तस्या दायिका-दात्री, पुनः श्रेयसी-अतिशयेन प्रशस्या, मुखवस्त्रिका-मुखावगुण्ठनपटः जैनानां मुखे बद्धा सती विजयते-सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥ ५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मुख से उत्पन्न वायुकाय की हिंसा से बचाने वाली, तथा पढ़ने के समय उच्छिष्टादि दोषों को दूर करने वाली, जैन शास्त्र के सभी आगमों में विहित, इस अपार संसार समुद्र के अन्दर महापोत (जहाज) की तरह उद्धार करने वाली रत्नत्रय को देने वाली ऐसी यह मुखवस्त्रिका जैन लोगों के मुख पर बँधी हुई बहुत प्रशंसनीय तथा शिव सुख को देने वाली विजय का पाती है ॥ ५ ॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् पं० अनन्तदेव शास्त्री काव्यतीर्थ, धार स्टेट]

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

ध्वान्तस्य प्रतिबन्धिका सुरुचिरा चेन्दोर्यथा चन्द्रिका,
भीतेश्चापि निवर्तिका बलवतां शक्तिर्यथा ह्युत्तमा।
अज्ञानस्य विनाशिका खलु सती विद्या बुधानां तथा,
जन्तूनां प्रतिबन्धिका विजयते 'तुण्डे यथा वस्त्रिका'॥ ६॥

टीका—यथा इन्दोः-चन्द्रस्य, सुरुचिरा-आह्लाददायिनी चन्द्रिका-कौमुदी। 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने' त्यमरः। ध्वान्तस्य-तमसः, प्रतिबन्धिका-प्रतिविनाशिका अस्तीति शेषः। यथा इन्दोः ज्योत्स्ना ध्वान्तं निवारयति। अपि च, यथा बलं-सामर्थ्यं विद्यते येषां तेषां बलवतां शक्तिमतां शूराणामित्यर्थः। उत्तमा—उत्कृष्टा, शक्तिः—सामर्थ्यं, भीतेः—भयस्य, निवर्तिका-निवारिका भवतीति शेषः। यथा शूराणां शक्तिः मानवानां भीतिं दूरीकरोति। अपरं च, बुधानां-पण्डितानां, सती-शुद्धा, विद्या-ज्ञानं, अज्ञानस्य विनाशिका-निवर्तिका, खलु-नूनं निश्चयेनेत्यर्थः। यथा विदुषां विद्या लोकस्य अज्ञानान्धकारं नाशयति। तथैव जन्तूनां-क्षुद्रकीटकानां, प्रतिबन्धिका-निवारका तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका जैनानामिति शेषः। विजयते-सर्वोत्कर्षेण वर्तते इत्यर्थः। "विपराभ्यां जेः" इति तङ्। यथा चन्द्रिका तमः विनाशयति, शूराणां शक्तिः भीतिं नाशयति, अपि च विदुषां विद्या अज्ञानं दूरीकरोति, तथैवैषां जैनानां मुखवस्त्रिका क्षुद्रकीटादिकान् रक्षति॥६॥

हिन्दी-अनुवाद—जैसे चन्द्रमा की मनोहर आनन्द देने वाली चन्द्रिका (चाँदनी) अन्धकार को दूर करने वाली होती है, बलवान शूरवीरों की उत्तम शक्ति, भयभीत मनुष्यों के भय को दूर करने वाली होती है, और निश्चय करके विद्वानों की शुद्ध विद्या जगत् के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाली होती है, वैसे ही जैन मुनियों की मुखवस्त्रिका (मुँहपत्ती) छोटे छोटे जीवों की रक्षा करती है॥ ६॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् आशुकवि व विद्याभूषण कविराज पं० नित्यानन्दजी शास्त्री]

तथा

[व्याख्याता-श्रीमान् विद्याभूषण पं० भगवतीलालजी शर्मा दाधीच जोधपुर]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

उच्छ्वासस्वसितानिलान्तरपतत्सूक्ष्माऽसुमद्रक्षिका,
कालप्रोद्यतमक्षिकाभिपतनव्याघातसंतक्षिका ।
ज्ञानापेक्षितपुस्तकादिनिपतन्निष्ठेवसंवारिका,
स्थाने स्थानकवासिभिः सुमुनिभिर्बद्धा मुखे वस्त्रिका ॥७॥

टीका—उच्छ्वासश्वसितानिल श्वासोच्छ्वासाः, तैरेस्यान्तर्मध्ये ये पतन्तः सूक्ष्मा असुमन्तः-जीवाः तेषां रक्षिका; तथा, काले-कस्मिन्नपि समये प्रोद्यता-उपस्थिता या मक्षिका तस्या अभिपतनं-आकस्मिको मुखप्रवेशः स एव व्याघातः-विघ्नः, तस्य संतक्षिका नाशयित्री, अथ च ज्ञानाय अपेक्षितानि आवश्यकानि यानि पुस्तकादीनि तेषु निपतन् यः निष्ठेवः-थूत्कारः, तस्य संवारिका-निवारिका, एतादृशी गुणवती दोरकयोजिता, पूर्वोक्तलाभवती च वस्त्रिका स्थानकवासिजैनसाधुभिः-सुमुनिभिः, मुखे, स्थाने-युक्तं, "युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने" इत्यमरः बद्धा धारिता ॥ ७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—श्वासोच्छ्वास की वायु में पड़ने वाले जो सूक्ष्म प्राणी उनकी रक्षा करने वाली तथा किसी काल में अचानक आजाने वाली जो मक्खी उसका आकस्मिक मुखप्रवेशरूपी विघ्न का नाश करने वाली, और ज्ञान के लिये आवश्यक जो पुस्तकें आदि उन पर गिरने वाले थूक को निवारण करने वाली, ऐसी इस गुणवती (डोरा वाली व पूर्वोक्त लाभवाली) मुखवस्त्रिका को स्थानकवासी जैन सुमुनियों ने मुख पर-यथोचित स्थान पर धारण किया है ॥ ७ ॥

८

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

सूत्रैश्चारुविचारसाररचितैः पूर्णाऽर्हती वागिव,
श्रीतीर्थङ्करसद्गुरुस्तुतिरिव श्रेयोगुणावेष्टिता ।
वैशद्येन विशोभिता बहुतरं दन्तांशुमालेव या,
नित्यं स्थानकवासिभिर्लसति सा 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥८॥

टीका—स्थानकवासिजैनसाधुभिर्मुखे बद्धा-धृता सा वस्त्रिका नित्यं-निरन्तरं, लसति-शोभते । किमिव सा धृता ? इत्यत उपमानत्रयं वर्णयति आर्हती-जैनी, वागिव-वाणीव, यथा साधुभिः जैनी वाणी मुखे धार्यते तथा इत्यर्थः । कथंभूता सा ? चारुणा विचारसारेण रचितैः, सूत्रैः-आगमैः, पूर्णा इति जिनवाणीपक्षे । वस्त्रिकापक्षे तु चारुणा विचारसारेण रचितैः, सूत्रैः-तन्तुभिः पूर्णा । पुनः किमिव धृता ? श्रीतीर्थङ्कराणां सद्गुरूणां च स्तुतिरिव । तेषां स्तुतिरपि मुखे धार्यते । कथंभूता सा स्तुतिः ? श्रेयोभिः गुणैः दयादिभिः आवेष्टिता । वस्त्रिकापक्षे तु श्रेयसा-प्रशस्यतरेण गुणेन दोरकेण आवेष्टिता । पुनः किमिव ? या दन्तांशुमाला इव-दन्तकिरणमालेव । साऽपि मुखे ध्रियते । कथंभूता सा ? वैशद्येन स्वच्छतया बहुतरं विशोभिता, इत्युभयपक्षे, इत्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—स्थानकवासी जैन साधुओं ने मुख पर जो मुखवस्त्रिका धारण की है वह हमेशा शोभा को प्राप्त होती है जैसे कि साधुओं के मुख में धारण की हुई जैन शास्त्ररूप वाणी शोभती है। कैसी है वह वाणी ? उत्तम विचारसार करके रचित सूत्र और आगम करके पूर्ण। मुखवस्त्रिका पक्ष में, सुन्दर विचार सार करके रचित ऐसे सूत्र के तन्तुओं से पूरित। फिर कैसी है ? कि श्री तीर्थंकरों और सद्गुरुओं की स्तुति की तरह मुख पर धारण की हुई शोभती है। वह स्तुति कैसी है ? कल्याणकारक दया [illegible] गुणों से वेष्टित [illegible] मुखवस्त्रिका पक्ष में [illegible] सुन्दर [illegible] [illegible] फिर कैसी है ? [illegible] दन्त [illegible] की किरणों के सदृश मुख पर धारण की जाती है [illegible] फिर वह कैसी है ? [illegible] स्वच्छता के कारण सुशोभित है ॥ ८ ॥

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

चाङ्गयं चुम्बति चन्द्रिकाऽनवरतं नो चन्द्रबिम्बे तथा,
हंसी चापि विलासमेति नितरां पङ्केरुहे नो तथा ।
ताम्बूलद्युतिरप्यहो न हि तथा यूनां मुखे शोभते,
भाति स्थानकवासिनां व्रतवतां 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥६॥

टीका—स्थानकवासिनां यतीनां-जैनसाधूनां, तुण्डे-मुखे, यथा वस्त्रिका भाति अर्थात् शोभते, तथा चन्द्रबिम्बे चन्द्रिका अनवरतं-निरन्तरं, चाङ्गयं-चङ्गता मनोहरतामित्यर्थः । नो चुम्बति-न प्राप्नोति-न शोभत इत्यर्थः । तथा पङ्केरुहे-कमले, हंसी अपि नितरां विलासं-शोभां न एति-प्राप्नोति । तथा यूनां तरुणानां मुखे, अहो इति आश्चर्यम् । ताम्बूलद्युतिः-ताम्बूलरागशोभापि न शोभते, इत्यर्थः ॥ ६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—स्थानकवासी यती जैन साधुओं के मुँह पर मुखवस्त्रिका जैसी शोभा देती है वैसी चन्द्र बिम्ब में चान्दनी भी नहीं शोभती अर्थात् वैसी मनोहरताको प्राप्त नहीं होती, पंकेरुह (कीचड़ मे पैदा होने वाले कमल में) हंसी भी वैसी शोभा को प्राप्त नहीं होती, और तो और, लेकिन तरुण पुरुषों के मुंह मे पान की लाली भी उतनी शोभित नहीं होती, यह आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥

[पूर्तिकार—श्रीमान पं० हरिवल्लभजी शर्मा, ब्यावर]

"यदा मुखे वस्त्रिका"

वक्त्रान्निःसृतकोप्यवायुपवनाद्वायव्यजन्तोरपि,
रक्षानन्यसुधर्मभूषनपरा निर्वाणसिद्धिप्रदा ।
याथार्थ्यं लभते हि कार्यनिवहान्तर्भमनवाहके,
[illegible]

टीका—आत्मनो बोधनं-ज्ञानं, तस्मिन् रता—
रतैः, सूरिभिः—श्रीयाचार्य्यचरणैः; यत्रानुस्यान,
तस्य, कोष्णवाष्पस्य—मन्दोष्णवाष्पस्य; जवनाद् वेगादिति
जन्तुस्तस्येति सुसूक्ष्मजन्तोरित्यर्थः । अपिशब्देनाऽत्रैतद्बोध्य
जीवरक्षार्थमपि मुखवस्त्रिकादि ध्रियते, स्थूलजीवरक्षणे तु
रक्षा-पालनमेव, अन्योऽद्वितीयो यः सुधर्मः-श्रेष्ठधर्मः दयेत्यर्थः,
परेति तज्ज्ञापिका, निर्वाणस्य-मोक्षस्य, सिद्धिं-सफलतां प्रद
यस्मात्कारणात् कर्णविवराणां-श्रवणश्रोत्राणां, अन्तर्मध्ये, धर्मस्
सुकृतैः संग्राहकैः -मापकैः, सूत्रैः-डोरकैः, बद्धा मुखे वस्त्रिका। यथार्थम्य
तथोक्तं लभते-प्राप्नोति; मुखवस्त्रिका हि मुनिषु श्रावकेषु च दया
अनन्यतां सूचयतीत्यर्थः ॥ १० ॥

हिन्दी-अनुवाद—आत्मज्ञान में मलग्न श्री आचार्य्यों के मुख में नि
हुई मन्दोष्ण भाफ के वेग से वायु के जीवों की भी जो रक्षा तद्रूपी अद्वितीय
(दया) के सूचन करने वाली, अत एव मोक्ष सिद्धि को देने वाली, मानों, कानों
भीतर धर्म को पहुंचाने वाले सूत्रों (डोरों) द्वारा मुख पर बाँधी गई वस्त्रिका यथा
र्थता को प्राप्त करती है ॥ १० ॥

भावार्थ—अति सूक्ष्म जीवों की भी रक्षा के निमित्त मुखवस्त्रिका को श्री
आचार्य्य धारण करते हैं, वह मुखवस्त्रिका दया धर्म को सूत्रों द्वारा सूचन करती
हुई सच्चे ज्ञान को दर्शा रही है ॥ १० ॥



[पूर्तिकार-श्रीमान् प० गोविन्दरायजी शास्त्री काव्यतीर्थ, महरौनी-झांसी]

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

धैर्यं दुःखविनाशकं रिपुगणे चिन्तासमुत्तेजकम् ,
बन्धूनां विरहेऽपि भद्रकरणे बन्धुत्वनिश्चि...

आशायाः प्रतिबोधकं भयहरं नैराश्यकाले तथा,
जीवानां परिरक्षणे बुधमता 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥११॥

टीका—धैर्यं दुःखस्य विनाशकं अर्थात् धैर्येणैव दुःखानि विनश्यन्ति। रिपुगणे च-शत्रुपक्षे चिन्तासमुत्तेजकम्-चिन्ताया उद्दीपकं, यतो धैर्यवतः पुरुषस्य शत्रुसमूहे आतङ्कस्फुरणं भवति। बन्धूनां विरहेऽपि मनुष्यस्य भद्रकरणे-श्रेयःकरणे परं बन्धुः धैर्यमेव इति विद्वद्भिः निश्चितम्। यथा जीवानां परिरक्षणे विद्वद्भिः तुण्डे-मुखे वस्त्रिका मता, तथा सर्वतो नैराश्यभावे आशायाः प्रतिबोधकम्-उत्पादकं भयहरं च धैर्यमेव इति निर्णीतम् ॥ ११ ॥

हिन्दी-अनुवाद—धैर्य दुःख का नाश करने वाला है, अर्थात् धैर्य से ही दुःखों का अन्त होता है। यही रिपुगण में चिन्ता को पैदा करने वाला है। यानें, शत्रुसमूह में धैर्यवान पुरुष का आतङ्क छा जाता है। भाई के अभाव में भी, धैर्य, मनुष्य का कल्याण करने वाला परम बन्धु है, ऐसा विद्वानों का मत है। और जैसे जीवों के रक्षणार्थ, विद्वानों के मतानुसार मुंह पर मुखवस्त्रिका बाँधी जाती है। वैसे ही पूर्ण निराशा में आशा का संचार करने वाला, तथा भय को दूर करने वाला धैर्य ही है, ऐसा निश्चित है ॥ ११ ॥

[पूर्तिकार—श्रीमान् पं० शिवदत्तजी जैन मुनि]

'तुण्डे यथा वस्त्रिका"

हंसाः सिन्धुतटे वने मृगपतिः वृक्षोपरिष्टात् पिकः
गाङ्गेये मणिरूर्मिका च कटकोऽङ्गुल्यां च हस्ते यथा।
केयूरं मुकुटं भुजे च शिरसि ग्रैवेयकं वै गले,
भान्त्येते स्थल एव सुष्ठु सुखदं 'तुण्डे यथा वस्त्रिका'॥१२॥

टीका—हे सुसखे ! एते पर्योक्ताः पदार्थाः स्थल एव-स्व २ ... परि एव सुष्ठु भान्ति । के ते ? हंसाः सिन्धुतटे-समुद्रतीरे, ... मृगपतिः-सिंहः, वने-अरण्ये, सुष्ठु लगति । पिकः-कोकिलः, ... दृश्यते । मणिः-रत्नं,गाङ्गेये-सुवर्णे, कान्तिं याति । च पुनः ऊर्मिका ... अङ्गुल्यामेव भाति । तथैव कङ्कः-कंकणं, हस्ते राजते । चकारः पा... पूर्णार्थः । केयूरं भुजे वरं लगति । च पुनः उत्तमाङ्गे-शिरसि, मुकुटं भाति वै इति निश्चयेन ग्रैवेयकं-ग्रीवाभूषणं, गले-कण्ठे, शोभनं दृश्यते । त... मुखवस्त्रिका तुण्डे-मुख एव वरं लगति ॥ १२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रिय सुमित्र ! ये उक्त पदार्थ अपने २ स्थान पर ही शोभा देते हैं। जैसे हंसों की पंक्ति समुद्र के तीर पर ही शोभा को प्राप्त होती है। सिंह ... में ही अच्छा लगता है। कोयल वृक्ष पर ही शोभा देती है। मणि सुवर्ण में ही ... से सुशोभित होती है। मुद्रिका अँगुली में ही शोभा को प्राप्त होती है। कड़ा हाथ ... अच्छा लगता है। केयूर भुजा में और मुकुट सिर पर ही शोभा देता है। कण्ठी गले ... ही शोभा देती है, वैसे ही मुखवस्त्रिका भी मुख पर ही अच्छी लगती है ॥ १२ ॥

[पठितार-श्रीमान पं० उमदयालजी शर्मा, बीकानेर]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

श्रीमज्जैनसुशासनं क्षितितले सर्वोत्तमं शान्तिदम्,
रक्षा तत्र विधीयते ह्यसुमतां षट्कायसंबन्धिनाम् ।
मा भूज्जीववधः कदापि वदनान्निर्यातवायोरपि,
साधूनामिति दृश्यतेऽत्र,विमला 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥१३

टीका—श्री-लक्ष्मी शोभा वहिरङ्गान्तरङ्गरूपा । तद्युक्तमीश्वरं ... मतम् । रागद्वेषादिशत्रुसमूहान्जयतीति जिनः । तस्मै इदमैजनं । सुशासनं-शासनम् । क्षितितले भूतले, सर्वोत्तमं-सर्वोत्कृष्टं शान्तिदम् । कस्मात् शा...

हि-यस्मात्, तत्र-तस्मिन् मते षट्कायसंबन्धिनां रक्षा विधीयते। व साधूनाम्मुखे या विमला घद्दा वस्त्रिका दृश्यते सा यस्माद्यत् स्वमुखान्निर्यातवायोरपि कदापि जीववधः मा भूदिति ॥ १३ ॥

हिन्दी अनुवाद—श्री जैन शास्त्र, संसार में सर्वोत्तम शान्तिदायक शास्त्र है इसमें छहों काय के जीवों की रक्षा करने को कहा गया है। मुखसे निकली से भी किसी जीव को बाधा न पहुँचे इसलिये जैन साधु लोग मुख पर भी त्र बाँधे रहते हैं ॥ १३ ॥

——:o:——

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

धूनामुपवेशनादिषु रजोहारस्तथा त्राणकम्,
ानां कुरुते वधाद्धि सततं जैनेऽत्र वै शासनम्।
स्योद्भूतसमीरणेन वधकाद्रक्षां करोत्यत्र वै,
ानां सुतरां सुबन्धनगता 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥ १४॥

टीका—साधूनाम्मुनीनाम्, उपवेशनादिषु,- शयना दिषु, रः जीवानां वधात् त्राणकं कुरुते। आस्यं-मुखं, तदुत्पन्नवायुना । वधकात् तुण्डे-मुखे, सुबन्धनगता-सूत्रनिबद्धा, वस्त्रिका सुतरां रोति ॥ १४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—साधुओं के उठते-बैठते जीवों की जो हिंसा होती है उसे रजोहार रोकता है और मुख से वायु निकलने से जो जीववध होता है उसे बंधी हुई मुख पर की वस्त्र की पट्टी नहीं होने देती ॥ १४ ॥

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

उच्छ्वासो यदि गृह्यते निजमुखेऽदत्वा च वस्त्रादिकं
जीवानां हननं भवेदिति जिनैराद्यागमे भाषितम्।
सावद्या कथिता गिरा भगवतीसूत्रे तथा भाष्यते,
जन्तूनां परिरक्षणाय विधिना 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥ १५ ॥

टीका—आद्यागमे—आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने तृतीयोद्देशे श्रीमहावीरस्वामिना भाषितं-कथितं यन्मुखे वस्त्रादिकं-वस्त्रं हस्तं चादत्त्वा-अकृत्वा यदि श्वासोच्छ्वासादिकं गृह्यते तदा जीवविराधना स्यादित्यतः साधुसाध्वीभिः स्वमुखे वस्त्रादिकं दत्वा श्वासोच्छ्वासादिकं ग्राह्यम् । तत्पाठः—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डुए वा वायनिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ताणं संजयामेव ऊसासेज्ज जाव वायणिसग्गे वा करेज्ज ।"—आचा० २, २, ३ ।

"सक्के देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासंति अणवज्जं भासं भासंति गोयमा ? सावज्जंपि भासंति अणवज्जंपि भासंति से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ सावज्जंपि जाव अणवज्जंपि भासं भासंति गोयमा जाहेणं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जुहित्ताणं भासं भासंति ताहेणं……सावज्जं……जाहेणं णिज्जुहित्ताणं भासं भासंति ताहेणं……अणवज्जं भासं भासंति……"

इति भगवतीसूत्रे वस्त्रादिकमदत्वा भाषमाणस्य भाषा सावद्या भवतीति कथितम् । तस्माज्जन्तूनां रक्षणार्थं विधिपूर्वकं मुखे वस्त्रिका बद्धास्तीति ॥ १५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मुख पर वस्त्र बिना लगाये यदि श्वासोच्छ्वास लिये जायं तो उसमें जीवों की हिंसा होती है। यह बात श्री महावीर स्वामी ने आचाराङ्ग—आचाराङ्ग सूत्र में कही है। भगवती सूत्र में भी ऐसी वाणी को सावद्य (पापसहित) बतलाया है। इसलिये जन्तुओं की रक्षा के लिये मुख पर यथाविधि मुखवस्त्रिका बांधना चाहिये।

"तुण्डे यथा वर्त्रिका"

ः खलु शोभते चरणयोर्नो पादुका मस्तके,
विराजते करयुगे कण्ठे न वा कुण्डले ।
स्य यदेव लोकविदितं तस्मिश्च तच्छोभते,
र तथा धृता सुघटते तुण्डे यथा वर्त्रिका ॥१६॥

उष्णीषः चूडामणिः खलु निश्चयेन, चरणयोर्न शोभतेऽस्था-
एवं पादुका मस्तके ध्रियमाणा न शोभते । हारो मुक्तावल्यादिः,
न विराजते-न शोभते एव कुण्डलयुगलं कर्णे शोभते,
ठे न शोभते । किं बहुना ? यस्य वस्तुनो यत्स्थानं लोके व्यवस्थितं
तत्स्थाने ध्रियते तदा वरं स्थानान्तरे न शोभास्पदम् । धूम्रवर्त्तिका
ता तथा न हितावहा यथा तुण्डे-मुखे ध्रियमाणा शोभते ॥१६॥

अनुवाद—मुकुट सिर पर ही शोभित होता है, पैरों में नहीं । जूतियाँ
ही लगती हैं, सिर पर नहीं । हार गले में ही मिलता है, हाथों में नहीं ।
में ही झुलता है, गले में नहीं । इसी तरह धूम्रवर्तिका भी मुख पर
अच्छी लगती है, हाथ में लिये रहे तो अच्छी नहीं लगती । हर एक चीज
पर ही खूब खूब मालूम होती है ॥१६॥

• -

कार—श्रीमान् पं० गिरधारी शर्मा नवरत्न, झालरापाटन]

"वद्धा मुखेऽस्थिता"

ास्ति महाप्रबोधविषया सूक्ष्मातिसूक्ष्मा गतिः,
सूक्ष्मतरा निकायनिरता नायान्ति दृष्टेः पथम् ।

मुखेऽग्निमन्दने यतोऽनिलहतो याति प्रकृष्टे मुखे,
[illegible] मूर्ध्वविनिःसरति [illegible] 'यथा मुखे वस्त्रिका' ॥१७॥

टीका सुगमवेतत् ॥ १७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—[illegible] है। [illegible] में आने [illegible] है। [illegible] (यह [illegible]) और [illegible] दृष्टि पथ में आने [illegible], [illegible] के [illegible] मुख के [illegible]) [illegible] पवन की वायु के धक्के से [illegible] है-[illegible] है। [illegible] हो जाती है। [illegible] नाश) न हो इसलिये [illegible] यथा मुखे वस्त्रिका ([illegible]) धारते हैं ॥ १७ ॥

[पूर्तिकार—श्रीमान् प० [illegible] शास्त्री, [illegible]]

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

आस्योच्छ्वासविकाशदूषितदिशा जीवन्ति ये वै नृपा,
प्राणिप्राणनिपीडनप्रतिरतास्ते मानवा दानवाः।
इत्येवं जनताऽवबोधविधये मेधाविभिर्धापिता,
धीयन्ते यमिनां वरैरिह जने 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥१८॥

टीका—सुगमघेतत् ॥ १८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मुख के श्वासों से दश दिशाओं को दूषित करने वाले और वायवीय जीवों की हिंसा करने वाले, ऐसे मनुष्य संसार में व्यर्थ ही जीते हैं, वे मान[illegible] नहीं किन्तु दानव हैं। इस प्रकार जनसमुदाय को समझाने के लिये बुद्धिमान् धर्मध[illegible] से मुखवस्त्रिका धारण की हुई है, जैसे कि आज भी संसार में संयमी लोग मुख प[illegible] उस मुखवस्त्रिका को धारण करते हैं ॥ १८ ॥

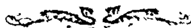
[पूर्तिकार-श्रीमान् पं० आयुर्वेदाचार्य रघुनन्दन शास्त्री विद्यानिधि, संस्कृताध्यापक-श्री जैन अनाथालय, मानपाड़ा आगरा ।]

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

लोकस्याप्युपकारकर्मकुशलाः सिद्धाः महामूर्त्तयः,
नैज्या कीर्त्या हि लोकं प्रददति परमं मोक्षरूपं विनोदम्।
वक्त्राच्छ्वासस्य गमने भवतु न तथा जीवमात्रस्य हननम्,
शिष्टाः जैनपरायणाः विदधते 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥१६॥

टीका—लोकस्य-संसारस्य, उपकारकर्मकुशलाः-उपकारकर्मणि चतुराः, सिद्धाः-मुनयः, महामूर्त्तयः-दिव्यमूर्त्तयः, शिष्टाः-श्रेष्ठाः जैनपरायणाः-जैनमतानुयायिनः, नैज्या कीर्त्या स्वकीयेनयशसा, लोकम्-जनम्, मोक्षरूपम्-आवागमनरहितम्, परमम्—उत्कृष्टम्, विनोदम्-आनन्दम्, प्रददति-प्राप्नुवन्ति। अपि च-वक्त्रात्-मुखात् श्वासस्य गमने-श्वास-निःसरणे, यथा-येन प्रकारेण, जीवमात्रस्य-स्थूलसूक्ष्मादिरूपसमस्त-प्राणिनः, हननं न भवतु, तथा तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका-पटबन्धनम्, विदधते-धारयन्ति ॥ १६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—संसार के उपकार करने में जो चतुर हैं, शारीराकृति जिनकी दिव्य है, अपनी कीर्ति से जिन्हों ने संसार को मोक्ष का परमानन्द प्रदान किया है, ऐसे शिष्ट जैन मुनियों ने मुख पर मुंहपत्ती इस लिये धारण कर रक्खी है कि उन के मुख से निकली हुई हवा से किसी भी प्रकार के जीव का हनन न हो ॥१६॥



"वद्धा मुखे वस्त्रिका"

मार्गोपान्तवनद्रुमावलिदलच्छायापनीतातपाः,
पूर्णाम्भर्णसरोवतीर्णपवनव्याधूतदेहश्रमाः ।
पुण्यैर्मन्दमुदः फलैर्भृतधियस्तोयैः कृतक्रीडनाः,
पान्थास्तत्र वहन्ति केलिकमलं 'वद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥[illegible]

टीका—तत्र-तस्मिन् जनपदे, पान्थाः-जैनमतानुयायिनः [illegible] केलिकमलं-ख्यालोच्चारणैः, वहन्ति-केलिकमलानां [illegible] केलिः ख्यालोच्चारणपराः [illegible] । कथंभूताः पान्थाः ? मार्गोपान्त[illegible] —पद्धुरागाः [illegible] आगत [illegible] । पुनः कथंभूताः ? पूर्णानि-जैनमतानुयायिजनभूतानि, [illegible] कानि [illegible] । पुनः कथंभूताः ? पूर्णं [illegible] । पुनः कथंभूताः ? [illegible] । पुनः कथंभूताः ? [illegible] ॥ [illegible] ॥

भिः, किन्तु दृष्टैः—दर्शनदाक्षैः, स्थूलतया-स्थूलरूपेण, अस्मादृशानाम्
[illegible]निनाम् विशिष्टज्ञानाभावात् न गोचरगताः—न नयनपथप्राप्ताः।
[illegible], नहि तेषां सूक्ष्मजीवानाम् सत्ताया किं प्रमाणं ? इत्यारेकायामाह—
[illegible]दर्शिभिः-केवलज्ञानिभिः सर्वज्ञैः, नियतं-निश्चितम्, दृष्टाः-केवलदृष्टि-
[illegible]लोकिताः। केवलज्ञानिभिर्दृष्टा इत्यनेन भवता किमिति चेत् आह-न केवलं
[illegible]र्शिभिः दृष्टा एव, अपितु तैरेव—सर्वज्ञैरेव, ते-जीवाः ज्ञापिता-सम्यक्
[illegible]रूपेण ज्ञानविषयीकारिताः, तत्-तस्मात् कारणात्, तेषां-
जीवानाम्, अवनाय-रक्षणाय, जैनमुनिभिः-अहिंसाधर्मधुरीणैः सर्व
[illegible], मुखे-मुखोपरि, वस्त्रिका-वस्त्रखण्डम्, बद्धा-दवरकेण मुखे
[illegible] ॥ १४ ॥

—:o:—

[illegible] ८०]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

[illegible] उद्भूतकर्मपूर्वोदये,
[illegible] पुनरपेक्षितं तदृगम् ।
[illegible] तस्य संदर्शयं तपसी,
[illegible] जैनमुनिना 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥१५॥

[illegible]

रे रे वञ्चक ! नीच ! निस्त्रप ! महामोहान्धकूपं नयन् ,
मामुद्गारनिदर्शनादिविविधव्याजेन सन्तोषयत् ।
शत्रूनेव ममेन्द्रियाण्यनुदिनं पुष्णास्यहो पुद्गले,—
मद्दत्तेर्धिगितीव जैनमुनिना 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥ २६ ॥

टीका—निजमुखं सम्बोध्य मुनेरुक्तिरियम् 'रे रे' इति नीचसम्बोधने, सम्भ्रमे द्वित्वम्, रे रे वञ्चक ! धूर्त ! नीच ! क्षुद्र ! निस्त्रप ! निर्लज्ज ! मुख ! त्वं मां वस्तुतः महामोहान्धकूपं नयत् कर्तव्याकर्तव्यविवेकाभावरूपे महत्यन्धकूपे पातयत्, वहिः मद्दर्शनार्थञ्च उद्गारस्य-अन्तर्वेधि 'डकार' रूपस्य, पक्षान्तरे भव्याद्युद्रेकरूपस्य निदर्शनादिरूपो यो विविधव्याजः— कपटस्तेन सन्तोषयन्-तृप्तिं नयत्, पक्षान्तरे प्रलोभयन् । मुखविशेषणत्वा नपुंसकता । अहो साश्चर्यखेदे, मद्दत्तैः-मया वितीर्णैः, पुद्गलैः-विविध भोग्यपदार्थैः, त्वं मम शत्रूनेव इन्द्रियरूपान् पुष्णासि, धिक्धिगस्तु इ ज्ञात्वा जैनमुनिना तत्र वस्त्रिका बद्धा पुष्ट्येव मुखं यन्त्रनार्हं उत्प्रेक्षालङ्कार ॥ २६ ॥

——:०:——

"तुण्डे यथा वस्त्रिका"

उत्पत्तिप्रलयादिहेतुमखिलं कर्मौघभूयोर्जितम् ,
कैवल्यं प्रतिपित्सुना भवमहागर्तेऽपि शर्मार्थिना
भोगाशीविषराशिमोहविवरान्तर्जीवसम्पातके ,
दान्निश्चेतसि दीयतां जिनमुनेस्तुण्डे यथा वस्त्रि

टीका उत्पत्तिः-भवप्राप्ति प्रलय मृत्युमायादी येषां ... स्तु ... कारणम् अखिलं

दृष्टविधम्, ऊर्जितं-प्रबलं कर्म, अवधूय-त्यक्त्वा, कैवल्यं-मुक्ति, प्रतिपित्सुना-प्राप्तुमिच्छता, भवमहागर्तेऽपि-संसारस्वरूपे विशालश्वभ्रेऽपि, शर्मार्थिना-मङ्गलाभिलाषिणा प्राणिनेति शेषः, भोगरूपविषयरसमूहानां मोहरूपस्य विवरस्य अन्तः-अभ्यन्तरे, जीवान्-प्राणिनः सम्पातयति-, प्रक्षिपत्येवंशीले चेतसि दान्तिः दीयतां, यथा जिनमुनेः-जैनसाधोः तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका-वस्त्रखण्डमिति. यथा मुखचापल्यपरिहारसूक्ष्म—जीवसंरक्षणार्थं जैनसाधुभिः सततं मुखे वस्त्रिका स्थाप्यते तथैव चेतश्चापल्यादिसकलदोषपरिहारार्थमुक्तविधेन पुरुषेण तत्र (चेतसि) दान्तिः दातव्येति भावः। उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् पण्डितरत्न आ० क० श्री श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज]

"बद्धा मुखे वस्त्रिका"

सम्यग्ज्ञानकपाटगुप्तिपरिखायुक्तं क्षमासालितं,
ध्यानप्राहरिकञ्च बोधिनगरं सद्ब्रह्मचर्यार्गलम् ।
कृत्वा कर्मरिपुं न यावदसिना धैर्येण विध्वंसये,
तावत्तस्य निदर्शनेति मुनिना 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥२८॥

टीका-यद्यपि मुखे वस्त्रिकाबन्धनस्य रहस्यमन्यदिति सुमतीतं तथाप्यत्र दिङ्निदर्शनं, किं तदित्याह-यावत्-यावत्पर्यन्तम्, बोधि-सम्यक्त्वरूपं नगरं, सम्यग्ज्ञानरूपकपाटयुक्तं, गुप्तिरेव परिखा-खाइ इति बहिर्वर्तमाना परितः खाता तया वेष्टितं, सत्-उत्तमं ब्रह्मचर्यमेव अर्गलं-विष्कम्भोऽर्थात् सम्यग्ज्ञानरूपस्य कपाटस्य संयोजकं कीलकं यस्मिंस्तत्, क्षमारूपेण सालेन-प्राकारेण-प्राचीरेण युक्तं समावृतमिति यावत्, तथा विशिष्टप्रज्ञारूपध्यानमेव प्राहरिकः-द्वारपालो यस्मिंस्तथाविधं कृत्वा-विधाय, धैर्यरूपेणासिना-खड्गेन, कर्मशत्रुं न विध्वंसये-न पराजये, तावत् अस्यैव-मुखस्य निदर्शना-तद्गुप्तिमर्यादाल्लोकेषु न दर्शयेत् इति शेषः, इति बुद्ध्यैव मुनिना मुखे वस्त्रिका बद्धेत्यर्थः । रूपकालङ्कारः ॥ २८ ॥

श्रीजैनागमप्रकाशकमण्डल, आगरा

के

स्थापित करने में हमें जिन पूज्य मुनि महाराजाओं ने और जिन सन्मान्य श्रावक महोदयों ने अपने अपने योग्य सहायता देने का वचन दिया है, जिनके कि भरोसे पर यह महान् कार्य करने को हम तैयार हुए हैं, उनके शुभ नाम धन्यवाद सहित प्रकाशित करना उचित समझते हैं—

मुनि गण—

(१) उपाध्याय पं० श्री आत्माराम जी महाराज
(२) प्रसिद्ध वक्ता पं० श्री चौथमल जी महाराज के सुशिष्य पं० श्री प्यारचन्द्र जी महाराज और पं० श्री शंकरलाल जी महाराज
(३) पं० श्री फकीरचन्द जी महाराज के सुशिष्य पं० श्री फूलचन्द्र जी महाराज
(४) मारवाड़ प्रान्त के पं० श्री जोरावरमल जी महाराज
(५) जैनमुनि श्री परमानन्द जी महाराज
(६) जैनमुनि श्री गोड़ीदास जी महाराज
(७) पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की संप्रदाय के श्री लालचन्द्र जी महाराज

श्रावक गण—

(१) श्रीमान् सेठ धनीराम जी बांठिया भीनासर
(२) श्रीमान् सेठ शिवचन्द जी नेमीचन्द जी शिवपुरी
(३) „ सेठ दीपचन्द जी देवल गांव मही
(४) विदुषी बहिन चिरताबाई लोहामंडी आगरा
(५) श्रीमान् सेठ गोपीलाल जी मेघराज जी मु० पेपो
(६) „ सेठ गुलाबचन्द जी वर्द्धीचन्द्र जी गुगल्या मु० शिवपुरी
(७) „ सेठ करनमल जी मु० ईसागढ़

उपर्युक्त सहायदाताओं और प्रकाशित हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थों को देखकर पाठक गण स्वयं यह अनुमान लगालें कि 'मण्डल' का कार्य कितना विस्तृत और कैसे अच्छे ढंग का होगा। हम समझते हैं हमें अपने मुंह से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

आशा है—कार्य की महत्ता और उपयोगिता को देखकर अन्यान्य पूज्य मुनिवरों एवं सम्मान्य सद्गृहस्थ वर्ग भी अपना अपना नाम 'मण्डल' की सहायक श्रेणी में लिखाकर कार्य का शीघ्र गति चलाने के कारण बनेंगे।

निवेदक—
पद्मसिंह जैन,
व्यवस्थापक—श्रीजैनागमप्रकाशक
[illegible]

दष्टविधम्, ऊर्जितं-प्रबलं कर्म, अवधूय-त्यक्त्वा, कैवल्यं-मुक्तिं, प्रति-पित्सुना-प्राप्तुमिच्छता, भवमहागर्तेऽपि-संसारस्वरूपे विशालश्वभ्रेऽपि, शर्मार्थिना-मङ्गलाभिलाषिणा प्राणिनेति शेषः, भोगरूपविषधरसमूहानां मोहरूपस्य विवरस्य अन्तः-अभ्यन्तरे जीवान्-प्राणिनः सम्पातयति-, प्रक्षिपत्येवंशीले चेतसि दान्तिः दीयतां, यथा जिनमुनेः-जैनसाधोः तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका-वस्त्रखण्डमिति. यथा मुखचापल्यपरिहारसूक्ष्म-जीवसंरक्षणार्थं जैनसाधुभिः सततं मुखे वस्त्रिका स्थाप्यते तथैव चेत-श्चापल्यादिसकलदोषपरिहारार्थमुक्तविधेन पुरुषेण तत्र (चेतसि) दान्तिः दातव्येति भावः । उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् पण्डितरत्न आ० क० श्री श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज]

"वद्धा मुखे वस्त्रिका"

सम्यग्ज्ञानकपाटगुप्तिपरिखायुक्तं क्षमासालितं,
ध्यानप्राहरिकञ्च बोधिनगरं सद्ब्रह्मचर्यार्गलम् ।
कृत्वा कर्मरिपुं न यावदसिना धैर्येण विध्वंसये,
तावन्नास्य निदर्शनेति मुनिना 'वद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥२८॥

टीका-यद्यपि मुखे वस्त्रिकाबन्धनस्य रहस्यमन्यदिति प्रतीतं तथाप्यत्र कविरिदमुत्प्रेक्षते, किं तदित्याह-यावत्-यावत्पर्यन्तम्, बोधि-सम्यक्त्वरूपं नगरं, सम्यग्ज्ञानरूपकपाटयुक्तं, गुप्तिरेव परिखा-कोट्टाद् बहिर्वेष्टिता परितः ख्याता तया वेष्टितं, सद्-उत्तमं ब्रह्मचर्यमेव अर्गलं-विष्कम्भोऽर्थात् सम्यग्ज्ञानरूपस्य कपाटस्य संयोजकं कीलकं यस्मिंस्तत्, क्षमारूपेण सालेन-प्राकारेण-प्राचीरेण युक्तं समालिङ्गितमिति यावत्, तथा विशेषेण ध्यानमेव प्राहरिकः-द्वारपालो यस्मिंस्तथाविधं कृत्वा-विधाय, धैर्यरूपेणासिना-खड्गेन, कर्मशत्रुं न विध्वंसये-न नाशये, तावत् आस्यस्य-मुखस्य निदर्शना-प्रदर्शनमप्यन्येषु न उचितमिति शेषः । इति बुद्ध्येव मुनिना मुखे वस्त्रिका बद्धास्ति । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ २८ ॥